प्रथम - अध्याय

" अभिलेखों में प्रतिपाद्य विषय "

प्रथम - अध्याय

" अभिलेखों में प्रतिपाद्य विषय "

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में साहित्यिक एवं पुरातात्विक दो प्रमुख स्रोतों का योगदान है । इसमें पुरातत्व की प्रमाणिकता तुलनात्मक दृष्टि से अधिक स्वीकार्य है । पुरातात्विक स्रोतों में अभिलेखों का सर्वाधिक महत्व है । दुर्भाग्य से आधुनिक परिभाषा के अनुरूप यूनान, रोम, चीन की तरह भारत का अपना इतिहास नहीं लिखा गया और न तो हेरोडोरस, थ्यूसीडिडीज और टेलियस जैसा इतिहासकार यहाँ पैदा हुआ । अस्तु विभिन्न स्रोतों जैसे साहित्यिक, आभिलेखिक मौद्रिक आदि साक्ष्यों में अन्तर्निहित तथ्यों का संकलन और इतिहास की संरचना अति आवश्यक हो जाता है । इन स्थितियों में आभिलेखिक साक्ष्यों की महत्ता अतीत के गौरवपूर्ण - इतिहास की पुनर्रचना में अत्यधिक उल्लेखनीय हैं ।[1]

जेम्सप्रिन्सेप के हम विशेष ऋणी है जिन्होंने सर्वप्रथम भारतीय इतिहास पुनर्लेखन में अभिलेखों के व्यवस्थित उपयोग को आवश्यकता की प्रकाश में लाने का सत्प्रयास किया, तदनुपरांत ऐतिहासिक स्रोत के रूप में अभिलेखों में अन्तर्निहित तथ्यों का उपयोग प्रारम्भ हो गया । अभिलेखों के निरन्तर अन्वेषण एवं उनमें अन्तर्निहित तथ्यों के अध्ययन के परिणामस्वरूप अब तक प्रकाश में आये सहस्रों अभिलेखों का उपयोग इतिहास के अध्ययन में किया जा चुका है और अनेकों के भूगर्भ दबे पड़े होने की संभावनाएँ हैं जो पुराविदों के उत्खनन, सर्वेक्षण की प्रतीक्षा में हैं । ये अभिलेख शिलाखण्डों - स्तम्भों § धातु प्रस्तर एवं काष्ठादि § मूर्तियों, मुहरों, मुद्राओं, पात्रों § धातु एवं मिट्टी के§ धातुपत्रों, ईंटों, भवनों की दीवालों गुफाओं आदि पर उत्कीर्ण मिले हैं ।

1.

शासकों या उनके प्रतिनिधियों और व्यक्तिगत या संगठनों के द्वारा उत्कीर्णित अभिलेख राजनीतिक संस्थाओं एवं विचारों के अध्ययन की दृष्टि से विशेष मूल्यवान सिद्ध होते हैं। इनमें प्रतिपाद्य विषय भेद की दृष्टि से कुछ अभिलेख राजशासन {शासनादेश}, कुछ प्रशस्तिपरक, दानपत्र तथा स्मारकादि हैं। संगीत एवं नाट्यशास्त्र विषयक तथ्य भी इनमें यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। राजाओं, राजवंशों के नाम, वंशवृक्ष, तिथियाँ, विजय अभियान, साम्राज्य विस्तार, अन्य कृतियाँ तथा उपलब्धियाँ, समसामयिक घटनाएँ, तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्थाओं की जानकारी इन अभिलेखों के अध्ययन से प्राप्त होती है।

अभिलेख देश एवं काल में प्रचलित विभिन्न भाषा, शैली तथा काव्य परम्परा के अनुसार पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, पालि-प्राकृत मिश्रित संस्कृत एवं शुद्ध संस्कृत के गद्य-पद्य एवं गद्य-पद्य मय चम्पू के काव्यात्मक भाषा शैली तथा तमिल, तेलगु, मलयालम् एवं कन्नड़ भाषाओं में उत्कीर्ण है। कतिपय अभिलेख तो साहित्यिकता, शुद्ध-प्रान्जल भाषा और काव्य सौष्ठव की दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनात्मकता परिचय देते हैं। समय-समय पर व्यवहार एवं प्रचलन के लिपियों, ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरमयिक, यूनानी तथा वाद में नागरी-लिपि में उत्कीर्ण हुए।

इन अभिलेखों की भूमिका इतिहास के क्षेत्र में दो दृष्टियों से उल्लेखनीय है। एक तो ये विषय प्रतिपादन का कार्य करते हैं। जो विषय या प्रसंग या घटना किसी अल्पस्रोत से सम्बन्धित अभिलेख के आलोक में आने के समय से इतिहासकारों को अज्ञात थे, यदि उनका परिज्ञान होता है तो ऐसे अभिलेख विषय प्रतिपादन की दृष्टि से हाथी गुम्फा का कलिंग राज खारवेल का अभिलेख, रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख, समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति आदि उल्लेखनीय हैं। कतिपय अभिलेख विषय समर्थन की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। जैसे इतिहास के ऐसे प्रसंग या घटनाएँ जो साहित्यिक, अनुश्रुति परक परम्पराओं से ज्ञात है किन्तु उनकी ऐतिहासिकता को लेकर तरह-तरह की उहापोह की स्थिति बनी रहती है। यदि ऐसे प्रसंगों के सम्बन्ध में अभिलेख मिल जाते हैं तो उन पर ऐतिहासिकता की मुहर लग जाती है और उन पर असंदिग्ध पीठिका प्राप्त हो जाती है। यह अभिलेखों का विषय समर्थन के कार्य की श्रेणी में आता है। चूँकि ये अभिलेख समसामयिक होते हैं इसलिए इनकी प्रमाणिकता स्वयं सिद्ध होती है।

इस प्रकार विषय प्रतिपादन की दृष्टि से हम अभिलेखों के तथ्यों को निम्न-लिखित विन्दुओं के अन्तर्गत विभक्त कर सकते हैं ।

1. राजाओं के नाम एवं राजवंशों के वंशावृक्ष --

भारत में मुख्यत: अशोक के समय अभिलेखों के उत्कीर्णन की परम्परा शासकीय स्तर पर प्रारम्भ होती है । यद्यपि कि इसके पूर्व के दो अभिलेख पिपरहवा का अस्थिकलश अभिलेख एवं सोहगौरा का ताम्रपत्र अभिलेख प्राप्त होता है । पिपरहवा के अभिलेख में बुद्ध के शाक्यवंशीय बन्धु-बान्धवों बिना किसी नाम के उल्लेख हैं । अशोक के एक अभिलेख के अतिरिक्त अन्य समस्त अभिलेखों में देवानाम् प्रियदर्शी राजा की - उपाधि का ही उल्लेख है । सर्वप्रथम कलिंगराज खारबेल के हाथी-गुम्फा अभिलेख उक्त विषय का प्रतिपादन किया है जिससे राजा का नाम खारबेल, उसके राजवंश का नाम आर्य चेदिवंश ज्ञात होता है । इससे आगे उसके पूर्वजों की भी जानकारी प्राप्त होती है । वह राजर्षि वशु का वंशज था । इस वंश का प्रवर्तक महामेधवाहन था, जिसके नाम पर यह राजवंश महामेधवाह वंश भी कहा गया ।[1]

शक नरेश रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से उसके वंश का परिचय प्राप्त होता है, जहाँ उसे स्वामी चष्टन का पौत्र, जयदामन का पुत्र महाक्षत्रप रुद्रदामन कहा गया है ।[2] इस प्रकार कम से कम तीन पीढ़ी के शक नरेशों के नामोल्लेख पिता-पुत्र के क्रम में प्राप्त होते हैं । गुप्त अभिलेख तो राजवंशावली की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है । उत्तरोत्तर पूर्वापर के क्रम से जैसे-जैसे गुप्त सम्राटों के अभिलेख प्राप्त होते हैं प्रथम शासक से लेकर पिता-पुत्र के क्रम में राजाओं के नाम उल्लिखित प्राप्त होते हैं । गुप्त अभिलेखों को

---

1. हाथी गुम्फा अभिलेख -- " ऐरेण महाराजेन महामेधवाहनेन चेति-राज- व स -वधनेन ।"
2. रुद्रदामन का गिरिनार (जूनागढ़) का अभिलेख --
" स्वामि चष्टनस्य पौत्र (स्य) (राज्ञ: क्षत्रपस्य सुगृहीत नाम्न: स्वामी जयदा - मन, (पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य भुरुभिरभ्यस्त नाम्नो रुद्रदाम्नो....

इस दृष्टि से यह प्रमुख विशिष्टता कही जा सकती है । एक प्रकार से प्रारम्भिक गुप्त राजाओं का अनुक्रम हमें गुप्त अभिलेखों की वंशावली वाले भाग से प्राप्त होता है । इनके अनुसार स्कन्दगुप्त तक इस वंश में क्रमश: गुप्त, घटोत्कच, प्रथम चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त, प्रथम कुमार गुप्त तथा स्कन्दगुप्त नामक शासक हुए जिनमें प्रत्येक अपने पूर्वगामी का पुत्र था । सर्वप्रथम समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति - (इलाहाबाद का स्तम्भ लेख) इसका दृष्टान्त प्रस्तुत करता है, जहाँ समुद्रगुप्त तक समस्त पूर्ववर्ती गुप्त शासकों का नामोल्लेख है[1] । यहाँ समुद्रगुप्त के मातृ पक्ष के वंश एवं माता के नाम का भी उल्लेख किया गया है । गुप्त वंशावलियों में राजाओं के नाम पितापुत्र परम्परानुसार मिलते हैं इसलिए इसमें ऐसे नाम नहीं मिलते जिन्होंने हो सकता है अपने भाइयों के पूर्व अथवा किसी राजा के विरुद्ध विद्रोह करके शासन किया था । उनका अस्तित्व हमें अन्य साक्ष्य से ज्ञात होता है । समुद्रगुप्त के साथ काच का (अनुमानत: समुद्रगुप्त का सौतेला भाई था) द्वितीय चन्द्रगुप्त के साथ रामगुप्त का, प्रथम कुमारगुप्त के साथ उसके सगे भाई गोविन्दगुप्त का तथा स्कन्दगुप्त के साथ पुरुगुप्त (जो सम्भवत: स्कन्दगुप्त का सौतेला भाई था) एवं घटोत्कचगुप्त का (वह भी हो सकता है स्कन्दगुप्त का भाई रहा हो) नाम इसी प्रकार जुड़े हैं ।[2]

(ख) युद्ध-गाथा ---

अधिकांश प्राचीन भारतीय अभिलेख सम्बन्धित शासक के पराक्रम, सैन्यशक्ति एवं उसके प्रभाव को रेखांकित करने के उद्देश्य से युद्ध-गाथाओं का उल्लेख करते हैं । अशोक का त्रयोदश शिलालेख उसके कलिंग विजय को एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में उल्लिखित करता है ।

---

1. समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ लेख --

" महाराजश्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कच महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य .... ।

2. डॉ. श्रीराम गोयल, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 7

अशोक त्रयोदश शिलालेख सम्प्रति पाकिस्तान के पेशावर जिले में यूसुफजई ताल्लुक के शाहवाजगढ़ी गाँव से प्राप्त है जो मकाम नदी के तट पर स्थित है, खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्णित है । इस लेख से ज्ञात होता है कि अशोक अभिषेक के आठ वर्ष बाद कलिंग विजय किया । इस प्रसंग कलिंग युद्ध की विभीषिका,उसके विनाशकारी परिणाम और तदनुपरांत अशोक के हृदय परिवर्तन का बड़ा मार्मिक वर्णन है । इस युद्ध के पश्चात अशोक जब अशोक ने चिन्तन किया कि इसमें डेढ़ लाख प्राणी अपहृत हुए, एक लाख आहत तथा इससे कई गुना मृत हुए तो उसे बड़ा पश्चाताप हुआ और वह युद्ध विजय की जगह धर्म विजय का संकल्प लेता है -- अपि च मुख्यमुत विजये, देवनप्रियस यो ध्रमविजयो[1] अशोक धर्म व्यवहार, धर्म प्रेम और धर्मोपदेश की दिशा में उन्मुख होकर तदनुकूल जन सामान्य पर अनुकम्पा करने लगता है ।

कलिंगराज खारबेल के हाथी गुम्फा अभिलेख से खारबेल के विजयों का परिज्ञान होता है । राज्याभिषेक के दूसरे वर्ष खारबेल शातवाहन नरेश शातकर्णी की परवाह न करते हुए अपनी चतुरंगिणी अश्व, गज, पैदल और रथ सेना का पश्चिम दिशा में अभियान कराया । इस विशाल वाहिनी के कण्हवेणा नदी तक जाकर असिक नगर को आतंकित किया ।[2] अभिषिक होने के आठवे वर्ष खारवेल ने बड़ी सेना के द्वारा गोरथगिरि पर आक्रमण कर राजगृह को उत्पीड़ित किया । उसकी विशाल सेना के आतंक से यवनराज डिमित आतंकित होकर मथुरा भाग गया ।[3] दसवें वर्ष दंड,सन्धि, साम आदि अनेक उपायों से भारतवर्ष की ओर प्रस्थान किया और सफलता प्राप्त की । ग्यारहवें वर्ष में तेरह सौ वर्षों से स्थापित त्रमिरसंघ को शक्तिहीन कर दिया और बारहवे वर्ष उत्तरापथ के राजाओं को त्रस्त किया । इस प्रकार यह अभिलेख खारवेल के शासन काल के सम्पूर्ण युद्ध गाथा को आलोकित करता है ।

---

1. अशोक का त्रयोदश शिलालेख ।
2. खारबेल का हाथीगुम्फा अभिलेख -- " दुतिये च वसे अचितयिता सात कीनं - पछिमदिसं हयनगर रथबहुलं दंडं पठापयति । कन्हवेणागताय च सेनाय वितासिति असिकनगरं ।
3. वही, " अठये च बसे महता सेन --- ---- गोरधगिरिं घातायियता राजगहं उपपीड़पयति । एतनि च कंमपदान स नादेन----सेनवाहने विपमुचितं मधुरं अययातो युवराज डिमित (दियमेत) ..... ।

गौतमी बलश्री का नासिक गुहालेख गौतमीपुत्र शातकर्णी के शासन काल के युद्ध गाथाओं से हमें परिचित कराता है । इसमें विदेशी म्लेच्छों को महाराष्ट्र भूमि से निकाल बाहर किया । इसने तत्कालीन क्षत्रिय राजाओं का भी मानमर्दन - किया था - " खतियदप मान मदनस " शक, यवन, पहलव आदि को भी इसने नष्ट कर दिया था । इस प्रकार शक-शातवाहन संघर्ष की गाथा का ज्ञान हमें इस अभिलेख से प्राप्त होता है ।

रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख से उसके पराक्रम द्वारा विजित प्रदेशों में पूर्व एवं अपर, आकर और अवन्ति § पूर्वी एवं पश्चिमी मालवा § अनूप, निवृत §मान्धाता प्रदेश§, अनार्त § द्वारिका के चारो ओर का प्रदेश§ सुराष्ट्र, श्वभ्र §साबरमती का प्रदेश§ मरू §मारवाड़§, कच्छ, सिन्ध, सौवीर, कुकुर § सिन्धु नदी तथा परियात्र गिरि के बीच का प्रदेश§, अपरांत §उत्तरी कोंकण§, निषाद आदि उल्लेखनीय हैं । यौधेयों और दक्षिणापथपति शातकर्णी के साथ भी उसके युद्धों का उल्लेख है । शातकर्णी को उसने दो बार पराजित किया[1] । स्पष्ट है कि दक्षिण के अभिलेख सातवाहन तथा क्षत्रप नरेशों के शादियों तक चलने वाले युद्ध का परिचय कराते हैं ।

समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ लेख तो युद्ध गाथा की दृष्टि से अनुपम अभिलेख है जो भारत के दिग्विजयी सम्राट के सम्पूर्ण युद्ध अभियान का एक व्यवस्थित विवरण उपलब्ध कराता है । इस अभिलेख से आर्यावर्त, दक्षिणापथ, पूर्वी एवं पश्चिमी सीमांत प्रदेश आटविक राज्यों एवं विदेशी राजाओं के विरूद्ध युद्ध एवं विजय अभियान की जानकारी प्राप्त होती है । ऐसे ही मेहरौली का लौह स्तम्भ अभिलेख राजा चन्द्र की युद्ध-विजयों, उदयगिरि का अभिलेख स्कन्दगुप्त का भीतरीस्तम्भ लेख, जूनागढ़ का - अभिलेख भी सम्बन्धित राजाओं के युद्ध गाथा से हमें परिचित कराते हैं ।

§ग§ राज्य-सीमा --

अभिलेख सम्बन्धित राजाओं की राज्य सीमा का ज्ञान कराने की दृष्टि से विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं । अशोक के अभिलेखों की स्थिति एवं उनके प्राप्ति स्थल मात्र से उसकी राज्य सीमा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है ।

---

1. रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख --
" दक्षिणापथपतेस्सातकर्णे द्विरपि नीर्व्याजमवजीत्य ..... ।"

शाहबाजगढ़ी (पेशावर), गिरिनार (काठियावाड़), मास्की (कर्नाटक), रामपुरवा, लौरिया नन्दनगढ़ (बिहार), रुम्मिनदेई, निग्लिवासागर (नेपाल) के अभिलेख अशोक की सीमाओं पर स्थित ज्ञात होते हैं । इस प्रकार अशोक के साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में नेपाल की तराई तक, पश्चिम में काठियाबाड़ तक, दक्षिण में कर्नाटक तक और पूरब में विहार और उड़ीसा तक अवश्य विस्तृत थीं ।

अभिलेखों के अन्त:साक्ष्यों से भी राज्य सीमा के निर्धारण में सहयोग लिया जा सकता है । जैसे अशोक के तेरहवाँ शिलालेख कलिंग विजय का वर्णन करता है और उसी के साथ सीमा पर स्थित विभिन्न भारतीय यूनानी राज्यों के नाम भी उल्लिखित हैं । उस सूची में चोडा, पाडा, सतियपुतो, केतलपुतो, तंमपंणी, (द्वितीय शिलालेख), योन, कम्बोज-गधरन, रठिकपतिक (पाँचवा शिलालेख) तथा अंतियोको, तुरमय - अंतकिनि, मक, अलिक सुन्दर यूनानी नरेशों के नाम (तेरहवें शिलालेख) मिलते हैं । " इह च सर्वेषु अंतेषु " इस उद्धरण से इनके मौर्य साम्राज्य पर स्थित होने की पुष्टि होती है । दूसरे लेख में दक्षिण के चोल, पाण्डया, केरल तथा सिंहल सीमा पर स्थित बताये गये हैं तथा पाँचवें शिलालेख में वर्णित राजा उत्तर पश्चिम भाग में स्थित थे । यूनानी राजा अंतियोक पश्चिमी एशिया में शासन करता था । मग उत्तरी अफ्रीका में, तुरमय मिस्र में, अंतकिनि तथा अलिकसुन्दर एशिया माइनर के समीप शासन करते थे । स्पष्ट है कि अशोक का राज्य सारे भारतवर्ष में सुदूर दक्षिण के कुछ भाग को छोड़कर तथा अफगानिस्तान के भूभाग में फैला था ।[1]

साँची स्तूप के दक्षिणी तोरण पर अंकित अभिलेख तथा नानाघाट के सातवाहन लेख हमें अवगत कराते हैं कि शातकर्णी (द्वितीय शताब्दी ई॰पू॰) के शासन में सातवाहन राज्य मालवा से महाराष्ट्र तक विस्तृत था । नासिक लेख से ज्ञात होता है कि गोवर्द्धन (नासिक-महाराष्ट्र) प्रभास (काठियावाड़), मरुकच्छ (भरौच), दशपुर (मालवा) पर नहपान का आधिपत्य हो गया था । कार्ले तथा जूनार के गुहालेख भी महाराष्ट्र पर उसके अधिकार की पुष्टि करते हैं । पुलमावि के नासिक लेख (19वें वर्ष) से ज्ञात होता है कि गौतमी पुत्र सातकर्णी ने नहपान को पराजित कर सूरठ (सौराष्ट्र),

---

1• वासुदेव उपाध्याय , प्राचीन भारतीय अभिलेख, पृ॰ 10

कुकुर (उत्तर काठियावाड़), अपरान्त (उत्तरी कोंकण), अनूप (मान्धाता), विदर्भ (प्राचीन बरार, आन्ध्र प्रदेश) तथा आकर-अवन्ति (पूर्वी तथा पश्चिमी मालवा) को अपनी राज्य सीमा में सम्मिलित कर लिया था। रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख से जानकारी प्राप्त होती है कि सातवाहन नरेश को रुद्रदामन ने दो बार पराजित किया और जिन प्रदेशों पर उनका अधिकार था रुद्रदामन अपने राज्य सीमा में सम्मिलित कर लिया।

गुप्तवंशीय राजाओं के अभिलेख भी गुप्त साम्राज्य की सीमा निर्धारित करने में सहायता करते हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में आर्यावर्त तथा दक्षिणापथ उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के लिए क्रमशः प्रयुक्त किये गये हैं। इस लेख से ही यह ध्वनित होता है कि उसका राज्य उत्तरी भारत में मथुरा तक विस्तृत था। ऐसे ही दक्षिण भारत के राजाओं और उनके राज्यों का नाम कोशल, कांची, पिष्ठपुर, एरण्डपल्ल, देवराष्ट आदि उल्लिखित हैं जो समुद्रगुप्त के राज्य सीमा में आ चुके थे। कामरुप तथा नेपाल आदि सीमान्त प्रदेश भी उनकी राज्य सीमा में उल्लिखित हैं। चन्द्रगुप्त का मेहरौली लौह स्तम्भ लेख तो पंजाब तक उसके द्वारा विजय प्राप्त राज्य सीमा में सम्मिलित करने का उल्लेख करता है --

" तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लीकाः।"[1]

चन्द्रगुप्त द्वितीय का उदयगिरि अभिलेख तथा साँची के तोरण लेख मालवा को भी गुप्त साम्राज्य की सीमा में होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। ऐसे ही स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख, इन्दौर ताम्रपत्र, बुधगुप्त के लेख आदि बाद के गुप्त राजाओं की सीमा पर प्रकाश डालते हैं।

(घ) प्रशस्ति --

भारत में ऐतिहासिक अथवा अर्द्धऐतिहासिक काव्यों का प्रारम्भ 700ई. के पश्चात ज्ञात होता है। ऐसे काव्यों के उद्गम के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कतिपय विद्वान तो अरबों के सम्पर्क से ऐतिहासिक काव्य का उद्भव मानते हैं। डॉ. वासुदेव उपाध्याय का मत है कि यह कहना यथार्थ तथा प्रमाणिक होगा कि ऐतिहासिक

---

1. मेहरौली का लौह स्तम्भ लेख ।

काव्यों का मूल स्रोत प्राचीन अभिलेखों में निहित है ।[1] अभिलेखों में राजा प्रतिष्ठा-पूर्ण कार्यों का उल्लेख रहता है जिसे प्रशस्ति कहा जा सकता है । उदाहरणार्थ खारबेल का हाथीगुम्फा लेख, रुद्रदामन का जूनागढ़ शिलालेख, समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख आदि सम्बन्धित राजाओं की प्रशस्ति का गुणगान करते है । मध्ययुगीन प्रतिहार नरेश बाडक के जोधपुर लेख में प्रशस्ति लेखन का रहस्य उद्घाटित किया गया है --

गुणाः पूर्व्व पुरुषायां कीर्त्यन्ते तेन पंडितै
गुणः कीर्तिरनश्यणती स्वर्गवास करीयतः ।

अर्थात् राज पंडित शासक के पूर्वजों का कीर्तिमान करते है क्योंकि अविनश्वर गुण कीर्ति स्वर्गवास देने वाली है । इसके अतिरिक्त प्राचीन प्रशस्तियों का अध्ययन काव्य का रसास्वादन कराता है । अतएव उन्हें प्रशस्ति काव्य कहना अत्युक्ति पूर्ण न होगा । काव्यों का रस, छन्द, अलंकार प्रशस्तियों में भी जैसे - रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख तथा हरिषेण रचित प्रयाग स्तम्भ लेख में विद्यमान हैं । दिग्विजय का अतिरंजित वर्णन काव्य के सदृश प्रशस्तियों की विशेषता है । जूनागढ़ लेख का प्रशस्तिकार एक विद्वान लेखक था उसने गद्य-पद्य की जो विशेषता उपस्थित की वह दण्डिन के काव्यादर्श[2] में भी उल्लिखित है । इस लेख में रुद्रदामन के लिए " स्फुट-लघु, मधुर-चित्र-कान्त शब्द समयोदारालंकृत गद्य-पद्य काव्य विना प्रवीणेन...।[3] का विशेषण प्रयुक्त किया गया है ।

हरिषेण साहित्य परम्परा का पंडित ज्ञात होता है जो समुद्रगुप्त का सान्धि-विग्रहिक, कुमारामात्य तथा महादण्ड नायक के पद पर भी था । उसने प्रयाग स्तम्भ लेख में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति का अंकन किया है । इस प्रशस्ति के प्रारम्भ में स्रग्धरा तथा शार्दूल विक्रीडित जैसे लम्बे-लम्बे आठ छन्द हैं जिसमें समुद्रगुप्त की कीर्ति का रमणीय वर्णन है ।

---

1. वासुदेव उपाध्याय, " प्राचीन भारतीय अभिलेख ", पृ० 131
2. दण्डिन - काव्यादर्श, अध्याय - 1
3. रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख ।

उक्त अभिलेख में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति गान करते हुए कहा गया है कि जिसकी बुद्धि सत्संग के सुख की कामना करती थी, जो शास्त्र के तत्वार्थ का पोषक था। सत्काव्य और श्री के विरोध को बुधजनों के गुणित गुणों की आज्ञा से विनष्ट कर विद्वत समाज में अविनाशी स्फुट काव्य से प्राप्त कीर्ति रूपी राज्य का भोग करता है।[1] आगे कहा गया है कि जिसका धर्म प्राचीर के समान दृढ़ था, कीर्ति चन्द्रमा की रश्मियों के समान उज्ज्वल और विस्तृत थी तथा जिसकी विद्वता शास्त्र के तत्वों का भेदन करने वाली थी। कवियों के बुद्धि वैभव को प्रकाशित करने वाली उसकी कविता थी। ऐसा कौन सा गुण था जो उसमें नहीं था। गुणवान और विद्वानों का वह एकमात्र ध्यान पात्र था।[2] उसे सैकड़ों युद्ध के अवतरण में दक्ष, भुजवल को एक मात्र बन्धु समझने वाला पराक्रमी कहा गया है --

विविध-समर-शतावतरण-दक्षस्य-स्वभुजबल पराक्रमैकबन्धोः पराक्रमाङ्कस्व।

इस प्रशस्ति परक लेख में समुद्रगुप्त को लोकानुग्रह की साक्षात प्रतिभा, कुबेर, वरुण, इन्द्र और यम के समान कहा गया है --

विग्रहवतो लोकानुग्रह धनद-वरुणेन्द्रान्तक समस्य।[3]

समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में यहाँ तक अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से कहा गया है कि वह अपनी तीक्ष्ण और विदग्ध बुद्धि से तथा संगीत कला के ज्ञान से वृहस्पति तथा

---

1. समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति --

   यस्य प्रज्ञानुषंगोचित सुख मनसः शास्त्रज्ञ तत्त्वार्थ भर्तुः....
   सत्काव्य श्री विरोधान्बुध गुणित गुणाज्ञाहृत हृतानेव कृत्वा...
   वह कविता कीर्ति राज्यं भुनक्ति।

2. वही --

   धर्म प्राचीर बन्धः शशिकर शुचयः कीर्तयः स-प्रताना वैदुष्यं तत्त्व भेदि..... कविमति - विभावोत्सारणं चापि काव्यं को न स्याद्यो यस्य नस्याद् गुणमति विदुषां ध्यानपात्रं य एकः।

3. समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख।

संगीताचार्य तुम्बुरु और नारद आदि को लज्जित कर दिया था । वह लौकिक कार्यों के पालन मात्र से ही मनुष्य था अन्यथा इस लोक में निवास करने वाला देवता स्वरूप था ।[1] उदयगिरि का गुहा अभिलेख चन्द्रगुप्त द्वितीय की प्रशस्ति है । ऐसे ही कुमारगुप्त प्रथम का मंदसोर अभिलेख उसकी प्रशस्ति है ।

इतना तो स्वीकार करना होगा प्रशस्तिपरक अभिलेखों में सम्बन्धित - शासकों से सम्बद्ध छोटी-छोटी घटनाओं को अत्युक्तिपूर्ण शैली में बढ़ा-चढ़ा कर भी अंकित किया गया है । इसका कारण यह था कि प्रशस्तिकार अपने संरक्षक शासक की मुक्त कंठ से प्रशंसा कर उसके चरित्र को अतिरंजित करता था । गुप्त लेख में एक स्थान पर ऐसी घटना का उल्लेख है जो इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरती । मेहरौली लेख की एकपंक्ति में चन्द्रगुप्त को दक्षिण का विजयी कहा गया है --

" यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिण: ।"

परन्तु अन्य प्रमाणों से यह सत्य नहीं ज्ञात होता । इसे अलंकारिक विवरण स्वीकार करना पड़ेगा ।

§ड॰§ पदाधिकारियों के पदनाम एवं नामोल्लेख --

प्राचीन भारतीय अभिलेखों पदाधिकारियों के पद नाम के उल्लेख की परम्परा तो हमें अभिलेखों के उत्कीर्णन प्रारम्भिक काल से ही प्राप्त होने लगती है । सौहगौरा का ताम्रपत्र अभिलेख प्राचीनतम प्राप्त अभिलेखों में है जहाँ सर्वप्रथम - " सवतियान महयतन " अर्थात् श्रावस्ती महामात्रों का उल्लेख प्राप्त होता है । डॉ॰ राजबली पाण्डेय इस लेख को अशोक पूर्व का चौथी ई॰पू॰ का मानते हैं ।[2] अशोक देलही-टोपरा स्तम्भ अभिलेख में पुरुष, रज्जुक एवं धर्ममहामात्रों का उल्लेख है । पुरुष ऐसे राजकर्मचारी होते थे जिनका कार्य साम्राज्य के विजित राज्यों में धर्म का प्रचार करना था । इनकी तीन श्रेणियाँ उच्च, मध्य और निम्न थीं ।

1· समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख --
निशितविदग्धमति - गान्धर्व ललितैर्व्रीडित त्रिदशपति गुरु तुम्बुरु नारदादेर्विद्वजनो·····लोकसमय - क्रियानुविधने मात्र मानुषस्य लोकधाम्नो देवस्य ।

2· भारतीय पुरालिपि, पृ॰ 73

रज्जुक --

अशोक के चतुर्थ स्तम्भ लेख रज्जुक अथवा लजुके के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए अशोक कहता है, " मैंने लाखों व्यक्तियों के ऊपर राजुकों की नियुक्ति की है । उनको अभियोग लगाने अथवा दण्डाधिकार है । रज्जुक आश्वस्त, निर्भय होकर कार्यों में प्रवृत हों। जन और जनपदों को हित सुख पहुँचाने की व्यवस्था करें और उन पर अनुग्रह करें । अशोक ने यह भी इच्छा व्यक्त की है कि व्यहार-समता एवं दण्ड समता के भाव का पालन करें[1]। अशोक के सप्तम स्तम्भ अभिलेख में भी रज्जुकों की नियुक्ति लाखों व्यक्तियों पर करने का उल्लेख है । स्पष्ट है कि रज्जुक राज्य के महत्वपूर्ण उच्च पदाधिकारी थे । डॉ॰ के॰पी॰ जायसवाल के अनुसार रज्जुक शब्द राजन् से व्युत्पन्न है जिसका तात्पर्य शासक अथवा शासक मंत्री से है । डॉ॰ मुखर्जी ने राजुकों का प्रान्तपाल माना है । डॉ॰ स्मिथ भी राजुकों प्रान्तपाल ही मानते हैं जो कुमारों के अधीन थे । व्यूलर करूधम्म जातक के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि रज्जुक §राजुक§ रज्जुग्राहक का संवादी है जो जमीन रस्सी के द्वारा नाप कर - सीमाएँ निर्धारित करता था । एक दृष्टि इनके सम्बन्ध में यह भी व्यक्त की जा सकती है कि ऐसे पदाधिकारी थे जो राज्य की भूमिकर आदि की व्यवस्था करते थे ।

युक्त § युता, युत § --

अशोक के तृतीय शिलालेख में उल्लिखित युक्त को राजकीय अधिकारी करते हुए डॉ॰ बरूआ ने विचार व्यक्त किया है कि ये पुरुष और अर्थशास्त्र में वर्णित अमात्य के समकक्ष थे । बुद्धघोष के अनुसार राजयुत अथवा राजायुत जिलों का शासन चलाने वाले राजकीय अधिकारी थे ।

प्रादेशिक § पादसिके, प्रदेशिक, प्रादसिके § --

प्रादेशिक का उल्लेख अशोक के तृतीय शिलालेख में मिलता है । व्यूलर ने इसका आशय " अधीन राजा, कर्न एवं सेनार्ट ने प्रान्तीय राजपाल एवं डॉ॰ स्मिथ

---

1. अशोक चतुर्थ स्तम्भ अभिलेख -- लजूका में बहूसु पानसहसेसु जनसि आयता
तेसं ये अभिहाले वा दंडे.....।

ने जिला अधिकारी किया है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लिखित प्रदेष्ट्री के महत्व-पूर्ण कार्य थे -- बलिप्रग्रह कन्टक शोधन तथा अध्यक्षानाम अध्यक्ष पुरुषानाम च नियमन । वह एक ओर समाहत्री एवं दूसरी ओर गोप, स्थानिक और अध्यक्ष के बीच मध्यस्थ का कार्य करते थे ।

परिषद § परिसा § --

अशोक के षष्ठ शिलालेख में उल्लिखित परिसर का उल्लेख है । व्यूलर ने तृतीय शिलालेख के आधार पर परिसा का अर्थ स्कूल से ग्रहण किया है जबकि षष्ठ शिलालेख के परिसा से किसी जाति या सम्प्रदाय की समिति से आशय ग्रहण किया है । डॉ॰ जायसवाल एवं डॉ॰ मुखर्जी ने अर्थशास्त्र के आधार पर इसका अर्थ मंत्रिपरिषद मानते हैं । डॉ॰ भण्डारकर इसका अभिप्राय परिषद या आधुनिक सचिवालय से ग्रहण करते हैं ।

धर्म महामात्र § धंम महामता § --

महामात्र शासन के उच्च पदाधिकारी की संज्ञा थी । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अमात्य की सर्वोच्च स्थिति महामात्य कही गयी है ।[1] अशोक स्तम्भ लेख से स्पष्ट है कि अशोक ने धर्म प्रचार के लिए नवीन कर्मचारियों की नियुक्ति की और छोटे-बड़े सभी पदाधिकारियों को भी आदेश दिया कि जहाँ-जहाँ वे है धर्म-संदेश को प्रचारित करते रहे तथा धर्म नियमों के पालन हेतु प्रजा को प्रेरित करते रहें । व्यूलर ने धर्म महामात्र का अर्थ धार्मिक-कानून का अधिष्ठाता ऐसा माना है, स्मिथ ने धर्म कानून का नियामक एवं हुल्तज ने नैतिकता का महामात्र स्वीकार किया है ।

शक क्षत्रयों के अभिलेखों से क्षत्रप एवं महाक्षत्रप दो स्तर के शासकों की जानकारी प्राप्त होती है । ऐसे ही मति सचिव और कर्मसचिव के भी पदनाम ज्ञात होते हैं । मतिसचिव सम्भवत: राजा के सलाहकार होते थे । कर्मसचिव राज्य योजना को कार्य रूप में परिणित करते थे । रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से ही चन्द्रगुप्त मौर्य के

1· अर्थशास्त्र - 1·13

2· रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख -- महाक्षत्रपस्य मतिसचिव-कर्म सचिवैरमात्यगुण समुद्युक्तैरप्यति ।

राष्ट्रीय पुष्यगुप्त एवं अशोक के एक प्रान्तपति यवनराज तुषास्फ का नाम भी ज्ञात होता है जिनकी देखरेख में सुदर्शन झील का निर्माण हुआ था ।[1]

पूर्व मध्ययुग के ताम्रपत्रों में पदाधिकारियों के नाम प्राय: प्राप्त होते हैं । गुप्तकाल एवं इसके बाद के अभिलेखों में पदाधिकारियों का उल्लेख प्राय: दृष्टिगत होता है । यहाँ वर्णक्रमानुसार उनका उल्लेख किया जा रहा है ।

अन्त:पुरिक -- महल का प्रबन्धक - मौर्यकालीन स्त्रीध्यक्ष महामात्र ।

अन्तपाल -- साम्राज्य की सीमा का अधिकारी ।

अन्त महामात्र -- सीमा सम्बन्धी राजनीति विचारक ।[2]

अग्रहारिक (दानाध्यक्ष), आयुधगाराध्यक्ष, अक्षपटलिक, आकराध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, आटविक, अमात्य, उपरिक, करणिक, कार्यान्तिक, कुप्याध्यक्ष, (जंगल का निरीक्षक) करितुरगपत्तनाकर (हाथी, घोड़े, गाय आदि पशुओं का अधिकारी), कुमारामात्य (प्रांतपति या मंत्री), कोटपाल, खाद्य पटपारिक (राजकीय पाकशाला का अधिकारी- प्रयाग प्रशस्ति), गमागमिक, ग्रामपति, ग्रामिक, ग्रामकूट, गोध्यक्ष, गोप (ग्राम का लेखा रखने वाला) गोप्ता (सर्व देशेषु विधाय गोप्तृन - स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख), गोल्मिक या गुल्मिक (जंगल का अधिकारी), चाट (पुलिस या सिपाही), चौरोद्धरणिक, ज्येष्ठ कायस्थ (ताम्रपत्रों का लेखक) तारिक (घाट निरीक्षक) दण्डनायक, दण्डपाशिक, दशग्रामिक, द्रौंगिक, दूतक या दूर, दौहसाधनिक, धर्म महामात्र, ध्रुवाधिकरण - (भूमिकर ग्रहणाकर्ता) नगराध्यक्ष, नगरश्रेष्ठिन, नौकाध्यक्ष, प्रतिहार, प्रमातार (भूमिनायक), प्रभातृ (न्यायधीश), पुरोहित, प्रांतपाल, पुस्तपाल (प्रमाणपत्रों का संग्रहकर्ता), बालाधिकृत (सेना का स्वामी), बलध्यक्ष, विनियुक्तक, विषयपति, मंत्री, महत्तर, महादण्ड नायक, महाक्षपटलिक, महासेनापति, युक्त, विनस्थितिस्थापक, सार्थवाह, सन्धिविग्रहिक आदि ।

---

1. राज्ञ: चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रीयेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितं अशोकस्य मौर्यस्य कृते यवनराजेन तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिलंकृते ।
2. अशोक का सप्तम स्तम्भ लेख ।

§च§ <u>अर्थव्यवस्था</u> --

प्राचीन भारत में आध्यात्मिक उन्नति के साथ भौतिक क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रगति हुई थी । प्राचीन अभिलेखों में तत्कालीन आर्थिक स्थिति का भी वर्णन मिलता है । अभिलेखों में वर्णित दान देने की प्रणाली से प्राचीन काल के वैभव तथा सुखी जीवन का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । अशोक ने धर्म प्रचार पर विशेष ध्यान दिया किन्तु शुंग-सातवाहन काल में आर्थिक नीति को सुदृढ़ किया गया ऐसा अभिलेखों से ध्वनित होता है । गुप्तकाल में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में उन्नति दर्शित होता है । एक गुप्तलेख में कहा गया है कि साम्राज्य में कोई भी अति दरिद्र तथा दु:खी न था ।[1] दानपत्र अभिलेखों के तथ्यों से ज्ञात होता है कि जनता के पास प्रचुर सम्पत्ति थी । मौर्ययुग से ही लेखों में प्रसंगवश आर्थिक पक्ष का उल्लेख पाया जाता है किन्तु बाद के लेखों से भूमिदान के प्रसंग जनता की आर्थिक स्थिति पर अधिक प्रकाश डालते हैं ।

भारत प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान देश रहा है । अशोक के द्वितीय शिलालेख में स्थान-स्थान पर फलों के वृक्ष लगाये जाने का वर्णन है -- मूलानि फलानि च यत यत सर्वत्र हारापितानि च । नालन्दा का ताम्रपत्र अभिलेख व्यंजनयुक्त भोजन का परिज्ञान कराता है --

सम्यग् वहुभृत दधिभि: व्यन्जनै: युक्तमन्त्रम् ।

दानकर्ता ऐसी भूमि का दान करता था जिससे दानग्राही खेती कर सके । कृषि की सुविधा की दृष्टि से सिंचाई की सुविधा पर राजा का विशेष ध्यान रहता था । एतदर्थ झील, नहर, तालाब, तथा बाँध के निर्माण का वर्णन लेखों में प्राप्त होता है । चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा काठियावाड़ में गिरिनार पर्वत के नीचे एक विशाल झील का निर्माण कराया गया था जिसकी इतनी अधिक उपयोगिता थी कि बाद के सम्राटों ने 400 वर्ष बाद भी उसकी मरम्मत कराकर उस पर बाँध का निर्माण कराया ।[2]

---

1. स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख -- "आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्ड न वा यो भृशा पीडित: स्यात् ।"
2. रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख ।

कलिंगराज खारवेल ने भी राज्याभिषेक के पाँचवे वर्ष नन्द शासन काल की नहर को तैयार किया ताकि जनता लाभान्वित हो सके --

" ओघाटितं तनसुलिय वाटा पणाडि नगरं पवेसयति ।"[1]

गुप्तकाल के राजाओं का ध्यान भी नहर निर्माण की ओर था । गुप्तकालीन अभिलेखों में खेतों के माप का वर्णन स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है । व्यापार की चर्चा भी अभिलेखों में प्राप्त होती है । व्यापारिक मार्गों का वर्णन तो अशोक, शुङ्ग - शातवाहन तथा शकक्षत्रपों के अभिलेखों में भरपूर हैं । गुप्त काल में व्यापार चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था जिसका आभास अभिलेखों से प्राप्त होता है ।

सातवाहन तथा क्षत्रपवंशी अभिलेखों से तत्कालीन संगठित शिल्प-श्रेणी का ज्ञान प्राप्त होता है । इन लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि इस समय के शिल्पियों तथा वणिकों के निकाय शक्ति सम्पन्न तथा समृद्ध थे । गुप्तकाल में भी उद्योगों की उन्नति का श्रेय तत्कालीन श्रेणियों तथा निगमों को था । ये निकाय सुव्यवस्थित रूप से व्यापार का परिचालन करते थे तथा वाकाटक एवं गुप्त युग में इन संगठनों की बहुत बड़ी संख्या थी । व्यापार से राज्य को बड़ी आय होती थी क्योंकि ये श्रेणियाँ या निकाय देश, विदेश में व्यापार का संचालन करते थे । भारत के देशी जहाजरानी से व्यापारिक क्षेत्र में अधिक सुविधा थी । कुमारगुप्त प्रथम के मंदसोर लेख में रेशम के व्यापारीगण की श्रेणी का उल्लेख है जिसके द्वारा सूर्य मंदिर के निर्माण तथा कालांतर में संस्कार का उल्लेख मिलता है ।[2] स्कन्दगुप्त के इन्दौर ताम्रपत्र लेख में तैलिक श्रेणी का विवरण मिलता है जिसने सूर्य मंदिर के दीपदान के निमित्त दो पल तेल का दान किया था ।[3] प्राचीन भारत की श्रेणियाँ बैंक कार्य भी करती थीं । पश्चिम भारत के क्षत्रप नहपान के जमाता ऋषभदत्त ने धार्मिक कार्य के लिए तुतुवाय श्रेणी के पास तीन हजार कार्षापण जमा किया था ।[4]

1· हाथीगुम्फा का अभिलेख ।

2· कुमारगुप्त का मंदसोर लेख -- शिल्पावाप्तैर्धन समुदयैः पट्टा वायैरुदारं ।
श्रेणीभूतैः भवनमतुलं कारितं दीप्त-रश्मेः ।।

3· स्कन्दगुप्त का इन्दौर ताम्रपत्र लेख --
" इन्द्रपुरनिवासिन्योस्तैलिक श्रेण्या देयं तैलस्य तुल्येन पलद्वयं तु ।

4· नासिक अभिलेख ।

(छ) समाज एवं धर्म --

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का प्रतिपादन सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करना नहीं था फिर भी प्रसंगवस अभिलेख तत्कालीन समाज एवं धर्म का परिचय कराते है । वर्णाश्रम व्यवस्था वैदिककालीन समाज का मुख्य आधार था जो बाद में जाति का बोधक हो गया । केवल शासन या दान के प्रसंग में दानग्राही की जाति आदि (वर्ण के नाम) उल्लिखित मिलते हैं । अशोक के लेखों में यह विचार व्यक्त किया था कि समाज में ब्राह्मणों का दर्शन करना तथा दान देना श्रेयस्कर है --

" ब्राम्हण समणानं साधुदानं । ब्राम्हण समणानं संपटिपति, ब्राम्हण-समणानं दसणो च दाने ।"[1]

सातवाहन नरेश अपने को सगर्व ब्राह्मण कहते हैं -- " एक बम्हण" -- " खत्तियदप मानमदनस ।"[2] नहपान के लेख में दान के प्रसंग में ब्राह्मण का उल्लेख प्राप्त होता है -- " देवान ब्राह्मणानां च कार्षापण सहस्राणि सतरि-दिन । देवताभ्य: ब्राह्मणेभ्य षोडश ग्राम देन ।[3]

युद्ध तथा अग्रहार देने के प्रसंग में क्षत्रियों का सन्दर्भ आया है । रूद्रदामन ने क्षत्रियों में वीर यौधेयगण को पराभूत किया था ।[4]

इस प्रकारान्तर गुप्त युग के पूर्व तक अभिलेख वर्ण व्यवस्था का परिचय प्रदान करते हैं । समाज को समुचित रूप से स्थिर रखने के लिए वर्णाश्रम धर्म की रक्षा शासक का कर्तव्य था, ऐसा अभिलेखों से ध्वनित होता है । गुप्तों के सामंत संक्षोभ के सम्बन्ध में खोह ताम्रपत्र में यह वाक्य आया है -- वर्णाश्रम धर्म स्थापना निरतेन परम भागवतेन-- संक्षो न बाँसखेड़ा के ताम्रपत्र में हर्षवर्द्धन के पिता प्रभाकरवर्द्धन के समक्ष यही समस्या थी । अतएव वह इसकी रक्षा में दत्तचित्त से लगा रहा ।[5]

---

1. अशोक का शिलालेख, 3,4,8
2. नासिक गुहालेख (पुलमाविका)
3. नहपान का नासिक लेख ।
4. रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख ।
5. वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत्त ।

अशोक के लेखों में " ब्राह्मण श्रमणानां दसणं " ब्राह्मण तथा साधु के दर्शन करने वाले कहा है । बुद्ध धर्म में वर्णाश्रम संस्था के लिए कोई स्थान नहीं था । छोटा बालक भी सीधे भिक्षु हो जाता था । इस प्रथा को रोकने के लिए प्रयत्न किया गया । प्रत्येक आश्रम के पालन करने के महत्व को बतलाया गया । गुप्तयुग तक समाज में द्वंद था कि कौन सा आदर्श माना जाय । परन्तु गुप्तकाल के पश्चात् आश्रम ने समाज में घर बना लिया तथा लेखों में अप्रत्यक्ष रूप से इसकी चर्चा मिलती है । सती-प्रथा, गणिका, वस्त्राभूषण तथा श्रृंगार के साधन, भोजन तथा पेय, अन्धविश्वास, मनोरंजन के साधन, सामाजिक उत्सव तथा समाज में व्यक्ति के चरित्र आदि का उल्लेख मिलता है ।

भारत की प्राचीन आभिलेखिक प्रशस्तियाँ इतनी बड़ी निधि है कि उनसे समस्त प्रकार के ज्ञान प्राप्त किये जा सकते हैं । यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय - शासकों के जीवन तथा वंश का इतिहास अभिलेखों में भलीभाँति वर्णित है । उनका वर्गीकरण यह संकेत देता है कि अधिकांश लेख धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लिखे जाते थे । अशोक के शिलालेख तथा स्तम्भ लेखों के सम्यक अध्ययन से धर्म तथा सदाचार सम्बन्धी बातों का परिज्ञान होता है । इस मौर्य सम्राट ने तो धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के निमित्त ही लेख उत्कीर्णित कराया था । उसके धार्मिक भावना के सम्बन्ध में अनेक मत व्यक्त किये जाते हैं । किन्तु अधिकांश विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि अशोक मात्र बौद्ध नहीं था, उसने जो कुछ अपने अभिलेखों के माध्यम से कहा है वह वास्तव में समस्त धर्मों का सार तत्व है ।

अशोक के अभिलेखों के माध्यम से यह आदेश दिया कि सभी लोगों से उचित व्यवहार किया जाय । गुलाम से समुचित व्यवहार करें । माता पिता की सेवा करें । साधु ब्राह्मण का दर्शन कर दान दें । प्राणियों की हिंसा न करें । ऐसा करने से इस संसार में सुख मिलेगा और अन्यत्र पुण्य होगा ।[1] इस आशय का विचार अशोक

---

1. अशोक का ग्यारहवाँ शिलालेख -- " देवानं पियेपियदसि वा जा एवं आह नथि हेपिये दानं अदिष धम दान । तत ऐषे दाषा भटकेषि सम्या पटियति माता पितुष सुषषा । मित षंयुत नादिक्यानं समना वंभ नाना दाने पानानं अनातंभे -- इयं साधु शो तथा कलंत हिद, लाकिक्ये चकं आलधे होति पलत च अनत पुना - पशावति तेना धंम दानेना ।"

के कई लेखों में दुहराया गया है । सभी धर्मों का सिद्धान्त ज्ञात होता है । वैसे डॉ॰ भण्डारकर ने अशोक लेखों के अन्त:साक्ष्यों के आधार पर उसे बौद्ध-धर्मानुयायी सिद्ध करने का प्रयास किया है ।

कलिंग युद्ध के उपरान्त अशोक का विचार परिवर्तित हो गया था । बौद्ध धर्म में उसकी अनुरक्ति बढ़ गयी तथा वह बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में संलग्न हो गया था । भाब्रू लेख में उसने बौद्ध ग्रन्थों के पाठ का अनुरोध किया है । स्वयं उसने बोध-गया और बुद्ध के जन्मस्थली रुम्मिन-देई की तीर्थ यात्रा की । अनेक दूतों को धर्म प्रचार कार्य में लगाया । उसके पुत्र एवं पुत्री सिंहलद्वीप तक बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए गये ।

मौर्य युग के उपरान्त बौद्ध धर्म को राजाश्रय नहीं प्राप्त हो सका तथापि जनता में बौद्ध धर्म के अनुयायी तथा उपासकों की संख्या कम न थी । शुंग शासन काल में स्तूप पूजा का काफी प्रसार हो गया था । भरहुत स्तूप की वेदिका के लेख में यह वर्णित है --

सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस
वाछि पूतेन धनभूतिन कारित तोरना ।

साँची वेदिका के हिस्सों पर दानकर्ता के नाम अंकित मिलते हैं ।

कुषाण शासक कनिष्क ने बौद्ध मत को प्रोत्साहित किया और चौथी बौद्ध संगीति बुलाई थी । मथुरा के बौद्ध प्रतिमाओं के आधार शिला पर कनिष्क के शासन काल में लेख उत्कीर्ण कराये गये थे । सारनाथ में विशाल बौद्ध मूर्ति मिला जिस पर लेख उत्कीर्ण है । कनिष्क के एक सिक्का पर बुद्ध की आकृति तथा वोडो - ॥ यूनानी अक्षरों में ॥ मुद्रालेख उसके धार्मिक भावना को द्योतित करता है ।

गुप्त शासन काल के लेख भी बौद्ध धर्म के अस्तित्व को द्योतित करते हैं । कुमारगुप्त प्रथम के मनकुंवार की बुद्ध प्रतिमा के आधार शिला पर लेख उत्कीर्ण है---

" इमं प्रतिमा प्रतिष्ठापिता भिक्षु बुद्धिमित्रेण ।"

जैन धर्म के लिए निग्रंथ शब्द का प्रयोग अशोक के लेखों में प्राप्त होता है । उड़ीसा में जैन मत का प्रचार उदयगिरि ॥ भुवनेश्वर के निकट ॥ के गुफा लेखों से ज्ञात होता है । हाथीगुम्फा लेख राजा खारबेल के जैन मत का में विश्वास का वर्णन

करता है । लेखक प्रारम्भ में ही अर्हतो एवं सिद्धों को प्रणाम किया गया है ।[1] उसकी रानी द्वारा उत्कीर्ण मंचपुरी गुहा लेख में यह वर्णन आया है कि उदयगिरि के भाग में जैन साधु निवास करते थे ।[2] द्वितीय शादी के जूनागढ़ लेख में उस व्यक्ति का वर्णन है जो जरामरण से मुक्त होकर केवल ज्ञान प्राप्त कर चुका है । कीनजू के शासन काल तथा गुप्त शासन काल में ऐसे लेख प्राप्त होते हैं जो जैन धर्म के प्रचार-प्रसार पर प्रकाश डालते हैं ।

मौर्य युग के उपरोक्त पुष्यमित्र शुंग ने ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन दिया ऐसा तत्कालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है । उसने दो अश्वमेध यज्ञों को सम्पन्न कर पुन: ब्राह्मण धर्म को प्रतिष्ठापित किया ।[3] सातवाहन नरेश शातकर्णि द्वारा कई यज्ञ करने का वर्णन नानाघाट लेख में मिलता है । प्रथम एवं द्वितीय शादी ई॰पू॰ में भागवत धर्म के विशेष प्रचार की पुष्टि कई लेखों से होती है ।

महाराष्ट्र के नानाघाट लेख के प्रारम्भ में ही संकर्षण तथा वासुदेव की प्रार्थना की गयी है । घोसुण्डी शिलालेख में राजा भागवत की उपाधि से विभूषित होकर अश्वमेध कर्ता कहा गया है । उसी में संकर्षण एवं वासुदेव के पूजा के निमित्त शिला प्रकार का उल्लेख है ।[4] यहाँ तक कि यूनानी राजदूत हेलियोडोरस भी - भागवत धर्मानुयायी हो गया था, जिसकी जानकारी अभिलेख से ही प्राप्त होती है ।[5]

1· हाथीगुम्फा अभिलेख -- नमो अरहंतानं नमो सब-सिधानं ।

2· मंचपुरी गुहालेख -- अरहंत पसादाय कलिंगानं समनानं लेनं कारितं ।

3· धनदेव का अयोध्या अभिलेख -- द्वि अश्वमेधयाजिन: सेनापते: पुष्यमित्र ।

4·
राज्ञा भागवतेन अश्वमेधयाजिना
भगवभ्यां संकर्षण वासुदेवाभ्यां ।

5· वेसनगर का गरुणध्वज स्तम्भ लेख --

देवदेवस वासुदेवस गरूडध्वजे अयं कारिते
हेलियोदोरेण भागवतेन ।

समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ लेख से विष्णु के वाहन गरूड़ का ध्वज गुप्तवंश का राजचिह्न ज्ञात होता है ।[1] गुप्त नरेश परम वैष्णव थे जिसका - वृतान्त गुप्त अभिलेखों में मिलता है । इन अभिलेखों और मुद्रा लेखों में राजाओं के लिए " परम भागवत " की उपाधि उत्कीर्ण है ।[2]

शैव मत से सम्बन्धित मुद्रालेख वीमकदफिसस के सिक्के पर अंकित मिलता है -- महरजस राजाधिराज सर्वलोग ईश्वरस महीश्वरस वीमकदफिसस । कनिष्क ने भी शिव {ओइशो} का नाम अंकित कराकर शैव मत के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया था । उसके उत्तराधिकारी हुविष्क तथा वासुदेव के सिक्कों पर शिव की प्रतिमा तथा नाम खुदा है जिससे उत्तर पश्चिम भारत में शैव मत का प्रचार ज्ञात होता है । नागवंशी राजा शिवलिङ्ग को अपने कन्धों पर वहन करते थे इसलिए उन्हें भारशिव कहा गया है । इस सन्दर्भ में वाकाटक प्रशस्ति[3] में कहा गया है--

शिवलिङ्गोद्वहन शिव-सुपरितुष्ट समुत्पादित
राजवंश-- भारशिवानां महाराज श्री भवनाग ।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि लेख से शिव पूजा का उल्लेख प्राप्त होता है । उसके मंत्री वीरसेन ने वहाँ शैव गुहा {शिव मंदिर} का निर्माण कराया था--

" भक्तया भगवत: शम्भोर्गुहामेतामकारयत "[4]

उपर्युक्त धार्मिक सन्दर्भों के अतिरिक्त अन्य उपासना के विविध पक्षों के सम्बन्ध में भी यत्र-तत्र उल्लेख अभिलेखों में प्राप्त होते हैं । सूर्य पूजा, शक्ति पूजा, गणेश पूजा आदि के प्रचार-प्रसार पर अभिलेखों से प्रकाश पड़ता है । प्राचीन भारतीय अभिलेखों के परिशीलन से एक विशेष प्रकार की धार्मिक सहिष्णुता का भी परिचय प्राप्त होता है । मौर्य सम्राट अशोक से लेकर 12वीं शदी ई० तक कई शासक धार्मिक सहिष्णुता की भावना से ओतप्रोत ज्ञात होते हैं । वे व्यक्तिगत जीवन में चाहे जिस किसी भी धर्म के अनुयायी थे लेकिन सार्वजनिक जीवन में सभी धर्मों के प्रति समादार का भाव रखते थे ।

---

1. प्रयाग प्रशस्ति -- गरुत्मदङ्क स्वविषयभुक्ति शासन याचगात् ।
2. द्रष्टव्य -- मिलसद भीतरी स्तम्भ लेख एवं भीतरी राजमुद्रा लेख ।
3. प्रवरसेन द्वितीय का चमक लेख ।
4. उदयगिरि का लेख ।